10. प्रेमाश्रम

डा. रामविलास शर्मा

ऊपर से देखने में 'प्रेमाश्रम' 'सेवासदन' से बिल्कुल दूसरी तरह का उपन्यास लगेगा, लेकिन वास्तव में दोनों एक-दूसरे के बहुत निकट हैं। प्रेमचन्द ने 'सेवासदन' में नारी-समस्या की छानबीन हल्के-फुल्के सतही ढंग से न की थी। उन्होंने दिखलाया कि वेश्यावृत्ति को पैदा करनेवाले और पालने-पोसनेवाले स्वार्थ समाज में मौजूद थे। इन स्वार्थों के निर्मूल हुए बिना किसी तरह का समाज-सुधार संभव नहीं था। महंत रामदास और बूढ़े किसान चेतू की घटना से उन्होंने दिखला दिया था कि ये स्वार्थ किस तत्परता और क्रूरता से अपनी रक्षा करते हैं। धर्म और कानून-सभी उनकी मदद के लिए आ जाते हैं। महंत रामदास ही दारोगा को घूस देते हैं। घूस देनेवाला हत्यारा तो बन जाता है, कृष्णचन्द्र और उनका परिवार तबाह हो जाते हैं।

प्रेमचंद उन उपन्यासकारों में थे जो पेड़ का पत्ता देखकर संतोष न करते थे, बल्कि उसकी जड़ें खोदकर देखते थे, चाहे वह पाताल तक ही क्यों न गई हों। यही सबब है कि नारी-समस्या और वेश्यावृत्ति की छानबीन करते हुए उन्होंने धर्म, कानून और संपत्ति के संबंधों पर भी अच्छी तरह प्रकाश डाला था। सामाजिक अन्याय के विष-वृक्ष की जड़ों को उन्होंने 'प्रेमाश्रम' में पूरी तरह उघाड़ दिया, शब्द-जाल और छल-कपट की मिट्टी हटाकर दिखला दिया कि अन्याय और अत्याचार के फल किन डालों में लगते हैं और कहाँ से उन्हें खाद-पानी मिलता है।

'सेवासदन' में कुँवर अनिरुद्धसिंह ने वेश्यावृत्ति पर जो विचार प्रकट किए हैं, उन पर ध्यान देने से यह संदेह नहीं रह जाता कि वे विचार प्रेमचंद के ही हैं। उनसे प्रेमचंद के व्यापक सामाजिक अनुभव और उनकी सूक्ष्म तर्क-बुद्धि का पता चलता है। कुँवर अनिरुद्धसिंह कहते हैं-

"हमें वेश्याओं को पतित समझने का कोई अधिकार नहीं। यह हमारी परम धृष्टता है। हम रात-दिन 'जो रिश्वतें लेते हैं, सूद खाते है, दीनों का रक्त चूसते हैं, असहायों का गला काटते हैं, कदापि इस योग्य नहीं है कि समाज के किसी अंग को नीच या तुच्छ समझें। सबसे नीच हम हैं, सबसे बडे पापी, दुराचारी, अन्यायी

हम हैं, जो अपने को शिक्षित, सभ्य, उदार और उच्च समझते हैं। हमारे शिक्षित भाइयों ही की बदौलत दालमंडी आबाद है, चौक में चहल-पहल है, चकलों में रौनक है। यह मीनाबाजार हम लोगों ने ही सजाया है, ये चिड़ियाँ हम लोगों ने ही फँसाई है। ये कठपुतलियाँ हमने ही बनाई है। जिस समाज में अत्याचारी जमींदार, रिश्वती कर्मचारी, अन्यायी महाजन, स्वार्थी बंधु आदर और सम्मान के पात्र हों, वहाँ दालमंडी क्यों न आबाद हो? हराम का धन हरामकारी के सिवा और कहाँ जा सकता है। जिस दिन नजराना, रिश्वत और सूद-दर-सूद का अंत होगा, उसी दिन दालमंडी उजड़ जाएगी, ये चिड़ियाँ उड़ जाएँगी-पहले नहीं।''

अनिरुद्धसिंह जोर देकर कहते हैं-पहले नहीं। वह उन लोगों को चेतावनी देते हैं जो नजराना, रिश्वत और सूद-दर-सूद का अंत किए बिना ही आत्मसुधार से समाज को बदल डालना चाहते हैं। समाज-सुधार का एक ही रास्ता है-सामाजिक संबंधों को बदलना। आत्म-सुधार से सामाजिक अन्याय और उत्पीड़न का अंत नहीं हो सकता। प्रेमाश्रम' में उन्हीं अत्याचारी जमींदारों, रिश्वती राजकर्मचारियों, अन्यायी महाजनों और स्वार्थी बंधुओं की कहानी लिखी गई है जिनको प्रेमचंद 'सेवासदन' में ही वेश्यावृत्ति का जनक और पोषक बतला चुके थे।

प्रेमाश्रम' पहले महायुद्ध के बाद के दौर का उपन्यास है। यूरोप की बड़ी-बड़ी ताकतों ने युद्ध के जरिए अपना संकट हल करने की कोशिश की; लेकिन युद्ध से संकट हल नहीं हुआ। गुलाम देशों की हालत और बुरी हो गई। वहाँ की जनता को और भी दबाकर रखने के लिए पश्चिमी ताकतों ने जोर-जुल्म बढ़ाया। आजादी चाहनेवाली जनता को रौलट कानून और जलियाँवाला बाग मिला। लेकिन दूसरों को गुलाम बनानेवाले अब पहले-जैसे ताकतवर न थे। वे अब दुनिया को मनमाने ढंग से बाँट-चूँटकर लूट न सकते थे। उन्हें खासतौर से डर पैदा हो गया था, सोवियत रूस से। उस देश में मजदूरों और किसानों ने जमींदारों और पूँजीपतियों का राज खत्म कर दिया है - यह खबर दुनिया के सभी देशों में फैल गई थी। इसे हिंदुस्तान की जनता ने भी सुना था, पढ़े-लिखे लोगों ने ही नहीं गाँवों के किसानों ने भी। हिंदुस्तान के लोग अंग्रेजों की गुलामी का जुआ उतार फेंकने के लिए और भी कोशिश करने लगे।

प्रेमचंद साहित्यकार की तटस्थता के हामी न थे। वह यह उपदेश देते थे कि अगर जन-साधारण के आंदोलन और संघर्षों को लेकर साहित्य न रचा जाएगा, तो

वह अमर न होगा। उनका सिद्धांत था-साहित्यकार का कर्त्तव्य है कि वह जनता की सेवा करने के लिए साहित्य रचे। हिंदुस्तान की बहुसंख्यक जनता किसानी करती है। इस जनता को छोड़कर औरों के बारे में लिखने से उपन्यासकार अपने देश और युग का प्रतिनिधि कैसे होता? इसलिए उन्होंने किसानों के बारे में लिखा।

सन् 20 और 30 के आंदोलनों में किसानों के जमींदार-विरोधी संघर्ष को बराबर दबाकर रखने या उसे एकाध जगह सीमित करने की बराबर कोशिश की गई थी। इन आंदोलनों की असफलता का बहुत बड़ा कारण यह भी था कि देश की बहुसंख्यक किसान जनता को अपनी माँगों के लिए लड़ने से रोका गया था। प्रेमचंद के लिए राष्ट्रीय स्वाधीनता का आंदोलन तभी सफल हो सकता था जब वह करोड़ों किसानों की अपनी माँगों का आंदोलन बन जाए। वह जानते थे कि किसानों के आंदोलन से स्वाधीनता का आंदोलन कमजोर न पड़ेगा, बल्कि उसे विजय की मंजिल तक ले जाएगा। हिंदुस्तान की सामंती ताकतें विदेशी प्रभुत्व का आधार थीं; इसलिए प्रेमचंद के लिए आजादी का मतलब था, इस आधार को खत्म करना।

जमींदार अंग्रेजों का दलाल हैं-प्रेमचंद ने इस बात को बहुत ही स्पष्ट शब्दों में राय कमलानंद से कहलाया है। रायसाहब ज्ञानशंकर से कहते हैं-

"यह जायदाद नहीं है, इसे रियासत कहना भूल है, यह निरी दलाली है। इस भूमि पर मेरा क्या अधिकार है। मैंने इसे बाहुबल से नहीं लिया। नवाबों के जमाने में किसी सूबेदार ने इलाके की आमदनी वसूल करने के लिए मेरे दादा को नियुक्त किया था। मेरे पिता पर भी नवाबों की बड़ी कृपादृष्टि रही। इसके बाद अंग्रेजों का जमाना आया और यह अधिकार पिता जी के हाथ से निकल गया। लेकिन राजद्रोह के समय पिता जी ने तन-मन से अंग्रेजों की सहायता की। शक्ति स्थापित होने पर हमें वहीं पुराना अधिकार फिर मिल गया। यही इस रियासत की हकीकत है।"

प्रेमचंद ने यहाँ बड़ी खूबी से दिखला दिया है कि अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई से जमींदारों के विरुद्ध संघर्ष का क्या संबंध था। प्रेमचंद ने दिखलाया कि जमीन के वास्तविक स्वामी किसान हैं जबकि उसके मालिक बन बैठे हैं अंग्रेज और उनके

दलाल। इसीलिए अंग्रेजों के बनाए हुए कानून-उनकी कायम की हुई कचहरियाँ और शांति और व्यवस्था की रखवाली पुलिस-किसानों को दबाने में सबसे आगे रहते थे।

अंग्रेजी साम्राज्यवाद और जमींदारों-जागीरदारों के आपसी संबंध समझे बिना 'प्रेमाश्रम' की रचना न हो सकती थी। प्रेमचंद में यह समझ उनके अध्ययन और मनन से पैदा हुई थी। इस समझ के बिना वह ज्ञानशंकर और गायत्री, ज्वालासिंह और गौसखाँ, मनोहर और कादिर - इन तरह-तरह के पात्रों को एक जगह न तो इकट्ठा कर पाते, न उनके जीवन-सूत्रों को एक दूसरे से जोड़ पाते। हिंदी में किसानों की समस्याओं पर ज्यादा उपन्यास लिखे ही नहीं गए, जो लिखे भी गए हैं, उनमें प्रेमचंद की सूझबूझ का अभाव है। इसलिए आज तीस साल बाद भी 'प्रेमाश्रम' हिंदी में अपने विषय का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है।

'प्रेमाश्रम' उपन्यास-रचना के साधारण नियम तोड़कर रचा गया है। कौन है इसका नायक, कौन है इसकी नायिका? जिन आलोचकों ने 'प्रेमाश्रम' में नायक न होने पर खेद प्रकट किया है, उसके कथानक की शिथिलता दिखलाकर प्रेमचंद को घटिया कलाकार माना है, उसमें मनोविज्ञान की गहराई या तलछट न पाकर प्रेमचंद को विश्व-साहित्यकार के पद से वंचित कर दिया है, उन्हें प्रेमचंद ने एक वाक्य में उत्तर दे दिया था-"आजाद-रौ आदमी हूँ, मसलेहतों का गुलाम नहीं।" (हंस', मई 1937)

बड़े कलाकार अपने कायदे-कानून खुद बनाते हैं। प्रेमचंद भी कायदे पढ़कर उपन्यास लिखने न बैठे थे। 'प्रेमाश्रम' में वे उन किसानों की जिंदगी की तस्वीर अत्याचार और अन्याय की कहानी सुनाना चाहते थे जिसे उपक्रम, उपसंहार, प्रयोजन और उपपत्ति की चर्चा करनेवाले सज्जन अक्सर भूल जाया करते थे।

प्रेमचंद ने बेगार करनेवाले, हल जोतनेवाले, प्लेग और सरकार का मुकाबला करनेवाले किसानों को नायक बना दिया। मनोहर, बलराज, कादिर, दुखरन आदि इस उपन्यास के हीरो हैं। ये नई तरह के नायक हैं -गुण और अवगुण, दोनों से विभूषित। इनकी कहानी का आरंभ किसी रमणी से आँख लड़ जाने से नहीं होता और न उस कहानी का अंत नायक-नायिका के विवाह से होता है। लखनपुर का

गाँव-संक्षेप में इस उपन्यास का नायक है; ज्ञानशंकर, गौसख़ाँ, कचहरी-कानून और पुलिस की जमात खलनायक है।

हिंदी में इस तरह का उपन्यास किसी ने पहले लिखा न था। एक तो किसानों पर लिखना ही रसराज का अपमान करना था। उस पर किसी खास आदमी को नायक न बनाना और भी अनोखा प्रयोग था। प्रेमचंद ने पाप और पुण्य के राक्षस और देवता नहीं रचे। उन्होंने उस धड़कन को सुना जो करोड़ों किसानों के दिल में हो रही थी। उन्होंने उस अछूते यथार्थ को अपना कथा-विषय बनाया जिसे भरपूर निगाह देखने का हियाव ही बड़ो-बड़ों को न हुआ था। उन्होंने दिखलाया कि हिंदुस्तान की साधारण जनता में साहस, धीरता और मनोबल के कौन-से स्रोत छिपे पड़े हैं। प्रेमचंद ने अपना कथा-विषय चुना-सदियों से पिसते हुए दासों की चेतना को, जो अब जाग रही थी और उनके हृदय में इंसान की तरह जीने की तीव्र लालसा पैदा कर रही थी। 'प्रेमाश्रम' लिखना एक अद्‌भुत साहस का काम था। साहित्य का झंडा लिए हुए प्रेमचंद ऐसे मार्ग पर चल पड़े जिसे पहले किसी ने तै न किया था। उनकी प्रतिभा का यह प्रमाण है कि उन्होंने जो साहस किया, वह दुःसाहस साबित नहीं हुआ। 'प्रेमाश्रम' एक अत्यंत लोकप्रिय उपन्यास के रूप में आज भी जीवित है।

'प्रेमाश्रम' किसान-जीवन का महाकाव्य है। उसमें उस जीवन का एक पहलू नहीं दिखाया गया, वह विशाल नदी की तरह है जिसमें मूल धारा के साथ आसपास के नालों का पानी, जड़ से उखड़े हुए पुराने खोखले पेड़ और खेतों का घासपात भी बहता हुआ दिखाई देता है।

यहाँ हमें दरवाजे पर बैठा मनोहर बैलों के लिए कड़वी छाँटता दिखाई देता है। कसरत और लावनी का शौकीन बलराज अपनी लाठी में तेल लगा रहा है। डपटसिंह मनोहर से उन डिप्टी साहब की चर्चा करता है जिनके इजलास में इजाफा-लगान का मामला तै होना है लेकिन जो जमींदार ज्ञानशंकर के दोस्त हैं। मनोहर सोचता है, कोई कानून ऐसा बन जाता जिससे इस तरह के मुकदमे इन हाकिमों के यहाँ न जाते तो कितना अच्छा होता! कानून सबके लिए एक-सा है फिर वह हाकिमों से क्यों डरता है? मनोहर का कहना है-

'हाकिम लोग आप भी तो जमींदार होते हैं, इसलिए वह जमींदारों का पच्छ करते हैं।'' फिर वह उम्मीद करता है कि शायद लाट साहब की पंचायत में किसानों की फरियाद सुनी जाए: लेकिन डपटसिंह इस आशा पर पानी फेर देते हैं। कहते हैं-''यहाँ भी तो सब जमींदार ही होते हैं, काश्तकारों की फरियाद कौन सुनेगा?''

किसानों के भय का कारण यह है कि पुराने जमींदार जटाशंकर के जमाने से उसके बेटे ज्ञानशंकर के जमाने में जोर-जुल्म और भी बढ़ गया है। जटाशंकर को अपनी इज्जत का बड़ा ख्याल रहता था। लड़कियों का विवाह हो तो ठाटबाट से, उत्सव मनाए जाएँ तो धूमधाम से, घर से निकलें तो पालकी पर चढ़कर। लेकिन ज्ञानशंकर के लिए पैसा ही इज्जत है। वह एक नए जमाने का जमींदार है, जब महायुद्ध खत्म हो चुका था और सारे हिंदुस्तान में दमन और लूट-खसोट का दौरदौरा था। वह अपने बाप का श्राद्ध भी करता है तो सोच-समझकर कि पैसा ज्यादा खर्च न हो जाए। अपनी 'रियासत' का इंतजाम करने में वह चचा-ताऊ के रिश्ते भूल जाता है, उसके लिए पैसे का रिश्ता ही सबसे बड़ा रिश्ता है। वह अपने भतीजे को ही जेल भिजवाना चाहता है लेकिन जब वह बरी हो जाता है, तो उसके श्रेय में हिस्सा बटाने भी पहुँच जाता है। उसका भाई अमरीका पढ़ने गया था। जब वह लौटकर आता है जो उसे खुशी नहीं होती, उसे डर लगता है कि वह जायदाद में हिस्सा माँगेगा। उसका ससुर नि:संतान है, इसलिए वह उसकी जमींदारी पर भी दाँत लगाए हुए है। वह उसे जहर देकर मार डालने में भी आगा-पीछा नहीं करता, ससुर न मरा तो इसमें उसका दोष नहीं। उसके एक साली है, गायत्री, जिसकी अपनी जमींदारी है। ज्ञानशंकर साली और जमींदारी दोनों को हड़पने की काफी कोशिशें करता है।

ज्ञानशंकर अपने वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। वह जितना धूर्त है, उतना चतुर नहीं। इसलिए उसकी बहुत कम योजनाएँ सफल हो पाती हैं। वह जितना धन का लोभी है। उतना ही कामी भी। इसलिए उसकी कामुकता कभी-कभी उसका बना-बनाया खेल बिगाड़ देती है। वह अपना काम बनाने के लिए दु:साहस कर सकता है; लेकिन वह दूसरों का चरित्र समझने में असमर्थ है। इसलिए उसे दूसरों से अपनी निंदा सुननी पड़ती है। वह कपटी, छली और दगाबाज है, लेकिन उसमें हिम्मत चोरों के बराबर भी नहीं है। उसकी कायरता पाठक की सहानुभूति दूर कर देती

है। वह जितना कायर है, उतना ही कठोर और निर्दयी भी है। वह लखनपुर के किसानों का मुख्य प्रतिद्वंद्वी है लेकिन उनके सामने वह अपने पैरों खड़ा नहीं होता। उसे कानून और पुलिस की बैसाखियों में खड़ा रखनेवाली ताकत अंग्रेजी राज की है।

प्रेमचंद के उपन्यास-साहित्य में ज्ञानशंकर तमाम खल पात्रों का सिरमौर है। उसके चित्रण में प्रेमचंद ने अद्‌भुत कौशल का परिचय दिया है। कथानक को सुसंबद्ध रखने के लिए भी वह कथाकार की बड़ी सहायता करता है।

उसके विरुद्ध लखनपुर की जनता है जो उससे उतनी ही भिन्न है जितनी मौत से जिंदगी।

प्रेमचंद ने बलराज को हिंदुस्तान के किसान-नौजवानों का प्रतिनिधि बनाया है। वह कसरत-कुश्ती का शौकीन है, गाना-बजाना, दोस्तों में गपशप करना उसे पसंद है। दुनिया का अनुभव कम है; इसलिए उतावलापन उसमें ज्यादा है। वह एक नये आदर्श से प्रभावित है, जिसके अनुसार हर इंसान को इंसान की तरह रहने का हक मिलना चाहिए। वह किसी भी तरह का अन्याय बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं है। वह उस लोहे की तरह है जो आग में तपकर इस्पात बनने की क्षमता रखता है।

गौसखाँ ने जब बेदखली की धमकी दी तो मनोहर ने जवाब दिया -"बेदखली की धमकी दूसरों को दें, यहाँ हमारे खेतों के मेड़ पर कोई आया तो उसके बाल-बच्चे उसके नाम को रोएँगे।''

बलराज इसी मनोहर का बेटा है। उसने पढ़ना-लिखना भी सीखा है। अखबारों से बदलती हुई दुनिया का हाल भी वह जानता है।

डपटसिंह जब मजाक करता है-"बलराज से कहो, सरकार के दरबार में हम लोगों की ओर से फरियाद कर आए'', तब मज़ाक में किसानों की बेबसी का छिपा हुआ भाव देखकर बलराज उत्तर देता है-

"तुम लोग तो ऐसी हँसी उड़ाते हो, जानो काश्तकार कुछ होता ही नहीं। वह जमींदार की बेगार ही भरने के लिए बनाया गया है। लेकिन मेरे पास जो पत्र आता है, उसमें लिखा है कि रूस में काश्तकारों ही का राज है,

वह जो चाहते हैं करते हैं। उसी के पास कोई देश बलगारी है। वहाँ अभी हाल की बात है, काश्तकारों ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब किसानों और मजदूरों की पंचायत राज करती है।

प्रेमचंद का हृदय संकुचित राष्ट्रवाद से ऊपर था। वह जानते थे कि इंसाफ और नई जिंदगी के लिए तमाम दुनिया की आम जनता जो लड़ाई लड़ रही है, हिंदुस्तान का स्वाधीनता-आंदोलन उसी का एक हिस्सा है। वह हिंदुस्तान के लोगों में एक नया भाव देख रहे थे कि दुनिया के तमाम मेहनत करने वाले लोग भाई-भाई हैं। बलराज में उन्होंने इसी नई चेतना की किरनें फूटती दिखाई हैं।

बलराज दुनिया के तमाम मेहनत करने वालों को अपना भाई समझता है इसलिए वह खुद हिंदुस्तान के गरीब किसानों और खेत-मजदूरों के लिए लड़ने-मरने के लिए तैयार रहता है।

मनोहर, बलराज और हलवाहा रंगी चमार खाना खाने बैठते हैं। तीनों की थालियों में जौ की मोटी रोटियाँ, अरहर की दाल और बथुए का साग है। बलराज की माँ ने एक कटोरा दूध उसके सामने रख दिया। औरों को दूध क्यों नहीं मिला? इसलिए कि बाकी दूध बेगार में चला गया था। बलराज इस पर बिगड़ उठता है। वह एक नया सिद्धांत पेश करता है-"जो हमसे अधिक काम करता है उसे हमसे अधिक खाना चाहिए।" उसे दूध-घी मिले और उसका हलवाहा सूखी रोटियों से ही संतोष करे-"ऐसा दूध-घी खाने पर लानत है। "

गायंत्री पर घात लगानेवाले, भाई के घर आने से दुखी होनेवाले, किसानों पर क्रूर अत्याचार करनेवाले ज्ञानशंकर की चरित्र-कालिमा के मुकाबले में बलराज की यह मानवता घी के दीये जैसी प्रकाशमान दिखाई देती है।

किसानों में यह मानववादी चेतना जमींदारों और हाकिमों को भयभीत कर देती है। किसानों को आतंकित करने के लिए वे उन पर तरह-तरह से अत्याचार करते जाते हैं। डिप्टी का दौरा होता है तो चपरासी एक किसान के पेड़ की लकड़ियाँ उठा ले जाते हैं। वह ठंड में दिन कैसे काटेगा, इसकी उन्हें चिन्ता नहीं। बकरीद मनाने के लिए कादिर मियाँ ने जो बकरा पाला था, वह हाकिमों के पेट में पहुँच जाता है। प्रेमचंद इस बात का संकेत करते हैं कि इस जुल्म के शिकार

हिंदू-मुसलमान दोनों हैं। पंसारी की दुकान से माल लूटा जाता था, उसकी कमी वह किसानों से ब्याज में पूरी करता था। हाकिमों को रोगी, नीरोग, बूढ़े, बच्चे, किसी का लिहाज नहीं। एक बूढ़ी अपने बेटे के साथ गाड़ी में अस्पताल जा रही थी, उसे उतारकर गाड़ी में लकड़ियाँ लादते उन्हें जरा भी संकोच नहीं होता।

एक बार हाकिम के आने पर गाँव के किसान इकट्ठे किए जाते हैं। बलराज किसी काम से गया है। आने में देर होती है। दो सिपाही उसे पकड़ लेते हैं और उसे बाँधना चाहते हैं, तभी मनोहर - "बाज की तरह टूटकर बलराज के पास पहुँचा और दोनों कांस्टेबलों को धक्का देकर बोला - छोड़ दो, नहीं तो अच्छा न होगा। इतना कहते-कहते उसकी जबान बंद हो गई और आँखों से आँसू निकल पड़े।''

कुछ आलोचक कहते हैं कि प्रेमचंद में मनोवैज्ञानिक गहराई नहीं है। मनोविज्ञान का अर्थ विकृत काम-विकार ही न हो तो यह भी बड़ा सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण है। बेटे की दुर्दशा देखकर बाप अपने को रोक नहीं पाता। तैश में आकर सिपाहियों को धक्का देता है; लेकिन दूसरे ही क्षण अपनी बेबसी समझकर रोने लगता है।

ज्ञानशंकर लखनपुर के आसामियों पर इजाफा लगान का दावा करता है। परिस्थितियाँ किसानों की चेतना को और पैना करती हैं और वे अपना एका और मजबूत करते हैं और जमींदार का मुकाबला करने की ठानते हैं। गाँव में ताऊन फैल जाता है; लेकिन हाकिमों-जमींदारों की तरफ से कोई रियायत नहीं होती। उनकी जिंदगी कितनी कड़वी हो चुकी है, इसका अंदाज इस बात से लग सकता है कि जब ज्ञानशंकर के भाई प्रेमशंकर डपटसिंह के पास पहुँचते हैं, जिसका एक लड़का जाता रहा है और दूसरा जानेवाला है, तो वह कहता है-

"क्या जाफा वसूल करने आए हो? उसी से ले लीजिए जो वहाँ धरती पर पड़ा हुआ है। वह आपकी कौड़ी-कौड़ी चुका देगा। गौसखाँ से कह दीजिए, उसे पकड़ ले जाएँ, बाँधे, मारें, मैं न बोलूँगा। मेरा खेती-बारी से, घर-द्वार से इस्तीफा है।''

इस किसान के लिए जिंदगी जहर का घूँट बन गई है। सहन करने की सामर्थ्य खो चुका है। उसका सारा आवेग उसके व्यंग्य-वचनों में फूट पड़ता है जिससे

सुनने वाला तिलमिला उठे। प्रेमचंद का व्यंग्य उपन्यासों में पात्रों का रोष, क्षोभ और प्रतिहिंसा प्रकट करने का साधन है। जितना ही किसान हाथ उठाने में असमर्थ होकर मन में घुटता है, उतना ही उसका व्यंग्य आँच में तपकर पैना हो जाता है।

इन तमाम कठिनाइयों के बावजूद गाँववाले जीत गए। इनकी एकता के आगे सरकारी कचहरियों को झुकना पड़ा। लेकिन मुकदमा हारने पर भी जमींदार शक्तिशाली है। प्लेग की वजह से लोगों ने अपने झोंपड़े जमींदार के बाग में डाले थे। ज्ञानशंकर उनमें आग लगवा देता है। इसके बाद उसने ताल का पानी बंद कराने की कोशिश की। जिन चीजों पर किसानों का हजारों साल से पंचायती हक था, जमींदार उन्हें भी हड़पने की कोशिश कर रहा था। प्रेमचंद लिखते हैं -"लोगों को कभी स्वप्न में भी यह अनुमान न हुआ था कि जमींदार इतनी जबरदस्ती कर सकता है। उनका चिरकाल से इस पर अधिकार था। पर आज उन्हें ज्ञात हुआ है, इस पर हमारा स्वत्व नहीं है।''

कादिर हाथ-पैर जोड़कर किसानों को हमेशा मनाता रहता है कि वे झगड़ा न करें। जब तालाब को लेकर जमींदार के आदमी फसाद करना शुरू करते हैं, तब सुलह की राह न देखकर वह खिसक जाना चाहता है। लेकिन सुक्खू चौधरी उसका हाथ पकड़कर रोक लेता है और कहता है कि निपटारा होने तक रुकना पड़ेगा। तब क्या झगड़ा मोल लिया जाए? गाँव के किसानों की एकता किस तरह मजबूत हो रही है, यह कादिर और सुक्खू की संक्षिप्त बातचीत से मालूम हो जाता है:

"कादिर खाँ-तो क्या कहते हो, लाठी चलाऊँ?
सुक्खू-और लाठी है किस दिन के लिए?

कादिर-किसके बूते पर लाठी चलेगी? गाँव में रह कौन गया? अल्लाह ने पट्ठों को चुन लिया।

सुक्खू-पट्ठे नहीं है, न सही, बूढ़े तो हैं। हम लोगों की जिंदगानी किस रोज काम आएगी?''

परिस्थितियों की मार खाते-खाते किसान अब प्रतिरोध के लिए तैयार हो उठे थे। सुक्खू चौधरी उन लोगों में थे जो किसी हालत में जमींदार का विरोध न करना

चाहते थे। लेकिन मजबूर होकर उन्हें भी मनोहर और बलराज की तरह बातें करनी पड़ीं।

जमींदार पर फिर दावा हुआ और किसान फिर जीते। सत्यनारायण की कथा हुई, ब्राह्मणों का भोज हुआ। गौस खाँ ने दारोगा से मिलकर सुक्खू के यहाँ कोकीन बरामद करा दी और उन्हें दो साल की कैद की सजा सुना दी गई।

गाँव में एक पुलिस-अफसर आता है। लोगों से बेगार कराई जाती है। कादिर खाँ बलराज को याद करते हैं, उसके अखबार में लिखी बातों को याद करते हैं-

'देखते तो हो, बलराज के अखबार में कैसी-कैसी बातें लिखी रहती हैं। यह सब अपनी तकदीर की खूबी है।'' -और रोने लगते हैं।

प्रेमचंद ने कादिर जैसे किसानों के पुरानपंथी विचारों की दीवार को जर्जर होकर ढहता हुआ दिखाया है। वह अन्याय का विरोध नहीं करना चाहते; हर चीज अल्लाह और किस्मत के नाम पर सह लेना चाहते हैं; लेकिन बलराज की कही हुई बातों ने एक नया भाव पैदा कर दिया है। एक देश है जहाँ किसान घास छीलने के लिए मजबूर नहीं किए जाते। यह भाव उन्हें अपनी 'तकदीर' पर आँसू बहाने के लिए विवश करता है।

दुखरन साफ की हुई जमीन लीपने से इन्कार करता है। उसे बुरी तरह जूतों से पीटा जाता है। कादिर खाँ अपना सिर आगे कर देते हैं कि पहले इसे पीट लो। धक्का देकर उन्हें गिरा दिया जाता है। तभी प्रेमशंकर आते हैं और वे प्रेम से सब मसले तय करने के पक्षपाती हैं। वह लोगों से काम करने को कहते हैं। दुखरन ने घर आकर शालिगराम की बटिया एक तरफ फेंक दी। ईश्वर से उसका विश्वास उठ गया था। तहसीलदार प्रेमशंकर से कहता है-"हम लोग एक तौर पर आपके मददगार हैं, रिआया को सताकर, पीसकर मजबूत बनाते हैं और आप जैसे कौमी हमदर्दों के लिए मैदान साफ करते हैं।'' प्रेमशंकर के पास इस नीचता का कोई उत्तर नहीं है। प्रेमचंद ने दृढ़ता से सत्य को चित्रित करते हुए सिद्ध किया है कि किसानों को जिनसे निपटना पड़ता है, वे हृदयहीन राक्षस हैं।

गौस खाँ गाँव की चरावर पर रोक लगाता है। जिन मैदानों में किसानों के पुरखे सदा से अपने जानवर चराते आए थे, उन पर अन्याय से अब जमींदार अधिकार

करना चाहता है। बलराज की माँ वहाँ अपने जानवर लिए पहुँचती है। उसे सुनाया जाता है कि सरकारी हुक्म है कि अब कोई जानवर वहाँ न चरे।

जो काम सुमन न कर सकी थी, वह बलराज की माँ बिलासी करती है। वह गाँव की पंचायती जमीन के लिए लड़ती है। प्लेग, मुकदमा, आगजनी - इन सबसे निपटकर बिना आतंकित हुए वह कहती है-

"कैसा सरकारी हुकुम? सरकार की जमीन नहीं है।....हमारे मवेसी सदा से यहाँ चरते आए हैं और सदा यहीं चरेंगे। अच्छा सरकारी हुकुम है, आज कह दिया चरावर छोड़ दो, कल कहेंगे अपना-अपना घर छोड़ो, पेड़ तले जाकर रहो। ऐसा कोई अंधेर है?" गौस खाँ के कहने से उसके जानवर घेर लिए जाते हैं और जमींदार के चाकर उन्हें मवेशीखाने ले चलते हैं। बिलासी रास्ता रोककर खड़ी हो जाती है।

फिर गौस खाँ से यह बातचीत होती है-

"गौसी खाँ-न हटे तो इसकी मरम्मत कर दो।

बिलासी-कहे देती हूँ इन जानवरों के पीछे लहू की नदी बह जाएगी। माथे गिर जायेंगे।

फैजू-हटती है या नहीं चुड़ैल?

बिलासी-तू, हट जा, दाढ़ीजार।"

फैजू के धक्के से गिरकर वह बेहोश हो जाती है, लेकिन जैसा उसने कहा था-माथे गिर गए। गौस खाँ को जान से हाथ धोना पड़ा। मनोहर औरत की इज्जत के लिए मर मिटा।

ज्ञानशंकर किसानों को इतना सताता है कि मनोहर अपने को धिक्कारने लगता है। गाँव के लोग उसके विरुद्ध हो जाते हैं, बलराज भी मनोहर का विरोध करने लगता है। ज्ञानशंकर पुलिस को मिलाकर बहुत से किसानों को हत्या के मामले में फँसा देता है। कादिर गाँव वालों की आलोचना का उत्तर देते हुए मनोहर के समर्थन में कहते हैं-"यारो ! ऐसी बातें न करो, बेचारे ने तुम लोगों के लिए तुम्हारे हक

की रक्षा करने के लिए यह सबकुछ किया। उसके जीवट और हियाव की तारीफ तो नहीं करते और उसकी बुराई करते हो ! हम सब-के-सब कायर हैं, वही एक मर्द है।''

कादिर के ये शब्द बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। प्रेमचंद पाठक को याद दिलाते हैं कि मनोहर ने जो कुछ किया, वह अपनी स्त्री की इज्जत रखने के लिए ही नहीं, वह सभी के हक की लड़ाई थी, जिस हक को जमींदार छीनना चाहता था। प्रेमचंद ने बड़े कलात्मक ढंग से ये शब्द उस कादिर से कहलाए हैं जो हमेशा मनोहर और बलराज को रोका करता था, उन्हें ईश्वर का भरोसा करके अन्याय सहने का उपदेश दिया करता था। कादिर ने जिंदगी के स्कूल में नया सबक सीखा था-अन्याय का विरोध न करना कायरता है। इसीलिए वह कहता है-"हम सब-के-सब कायर हैं, वही एक मर्द है।''

लेकिन मनोहर को इससे संतोष न हुआ। वह अपने ही उन भाइयों से दुर्व्यवहार की आशा न करता था, जिनके लिए उसने क्या कुछ न सहा था। वह निराश होकर आत्महत्या कर लेता है। धीर-वीर मनोहर मानसिक दृढ़ता की सीमा पार कर रहा था। हर व्यक्ति की सहनशीलता की सीमा होती है। उस सीमा तक पहुँचकर वह टूट जाता है।

प्रेमचंद के किसान देवता नहीं है; वे मनुष्य हैं। उनमें कमजोरियाँ हैं; वे उनसे लड़ते हैं। कभी जीतते हैं, कभी हारते हैं। प्रेमचंद ने चरित्र का उत्थान-पतन दिखाने में, एक साहसी लेकिन अति व्यथित किसान का हृदय पढ़ने में, अपनी ज्वलंत प्रतिभा का परिचय दिया है और प्रेमचंद ही विधवा बिलासी में गर्व-भाव का उदय होना दिखा सकते थे कि विधवा हुई तो क्या, उसने अन्याय के सामने कभी सिर नहीं झुकाया।

वह कहती है-"मैं विधवा हो गई तो क्या, घर सत्यानास हुआ तो क्या, किसी के सामने आँख तो नीची नहीं हुई।''

लेकिन उसकी मुसीबतों का अंत नहीं हुआ। प्रेमचंद एक विशाल संघर्ष को निर्मम यथार्थवादी की तरह उसके तर्कसंगत परिणाम की तरफ बढ़ाकर ले चलते हैं। अमन और कानून की ताकतें अब भी बहुत मजबूत हैं। लखनपुर के किसान अकेले पड़

जाते हैं। किसी दूसरे गाँव में जूँ तक नहीं रेंगती, क्योंकि अभी उनका कोई संगठन नहीं है। शहर से उन्हें कोई मदद नहीं मिलती, क्योंकि मजदूर से उनका एका नहीं है। सन् 1920 में जब प्रेमचंद ने यह उपन्यास लिखा था, तब ऐतिहासिक परिस्थिति ऐसी ही थी। प्रेमशंकर की प्रेम से सब झगड़े निपटाने की नीति किसानों को एक तकलीफ से भी नहीं बचा सकी।

बलराज और कादिर को काला पानी हो गया। बिलासी पर बकाया लगान का दावा किया गया। उसके जानवर, जिन्हें चरावर में ले जाने के लिए वह लड़ी थी, कुर्क कर लिए गए। चपरासियों द्वारा खुद बिलासी बुरी तरह पीटी गई।

किसानों के पास मालगुजारी देने के लिए कुछ न था। उन पर ज्ञानशंकर किस तरह जुल्म करता है, इसका वर्णन करते हुए प्रेमचंद ने लिखा है-

"फैजुल्लाह ने सख्ती करनी शुरू की। किसी को चौपाल के सामने धूप में खड़ा करते, किसी को मुश्कें कसकर पिटवाते। दीन नारियों के साथ और भी पाशविक व्यवहार किया जाता, किसी की चूड़ियाँ तोड़ी जातीं, किसी के जूड़े नोचे जाते। इन अत्याचारों को रोकनेवाला अब कौन था? सत्याग्रह में अन्याय को दमन करने की शक्ति है, यह सिद्धांत भ्रांतिपूर्ण सिद्ध हो गया।"

यथार्थवादी चित्रण का इससे अच्छा निर्वाह और क्या हो सकता था? 'सेवासदन' की तरह यह उपन्यास भी वास्तव में दुःखांत है। सत्याग्रह भ्रांतिपूर्ण सिद्ध हो गया। ऐसा मार्ग जो अन्याय का दमन कर सके, किसानों के सामने न था। यह ट्रेजेडी व्यक्तिगत या घरेलू समस्याओं को लेकर लिखे हुए दुःखांत उपन्यासों और नाटकों से कहीं ज्यादा विशद और मार्मिक है। यह एक युग की ट्रेजेडी है, जब किसान पर अत्याचार बढ़े हैं, उसने उनका प्रतिरोध करने की कोशिश की है लेकिन सफल नहीं हो पाया। यह दुःखांत परिणति एक दीर्घकालीन और संहारकारी संघर्ष के बाद हुई थी। एक तरफ लखनपुर का गाँव अपनी शक्ति बटोरता है, लड़ता है, परास्त होता है, फिर बिखर जाता है, दूसरी तरफ ज्ञानशंकर और कारिंदे, थानेदार और तहसीलदार, जज, वकील और पेशकारों की फौज है जो अपनी सारी ताकत से गाँव को कुचल देना चाहती है। प्रेमचंद ने इस संघर्ष को विस्तार से चित्रित किया है और ऐसा प्रभावशाली कौशल, घटनाक्रम को सजीव कर देने की ऐसी क्षमता खुद

इस संघर्ष में दोनों प्रतिद्वंद्वी बराबर के नहीं है। जमींदार और राजसत्ता असंगठित किसानों के मुकाबले में बहुत शक्तिशाली है। फिर भी पाठक की पूरी सहानुभूति लखनपुर के निवासियों के साथ रहती है, इसलिए कि वे नए जीवन के लिए, एक नए हिंदुस्तान के लिए लड़ते हैं। जहाँ तक किसानों का संबंध है, उनकी कहानी में पाठक की दिलचस्पी कम नहीं होने पाती। और अंत में प्रेमचंद, 1920 में ही पाठक के सामने यह निष्कर्ष रखते हैं-"सत्याग्रह में अन्याय को दमन करने की शक्ति है, यह सिद्धांत भ्रांतिपूर्ण सिद्ध हो गया।"

इसके बाद वही काल्पनिक समाधान है जिसने सेवासदन को कमजोर बनाया था। 'प्रेमाश्रम' का समाधान और भी कमजोर है। जो प्रेमशंकर लखनपुर को एक आदर्श गाँव बना देते हैं, वह किसानों के संघर्ष के दिनों में न उन्हें संगठित कर पाते हैं, न दमन और जुल्म का मुकाबला करने में उनका साथ देते हैं। वह विदेश से पढ़े हुए एक अच्छे-खासे भलेमानुस हैं जो सपने देख सकते हैं लेकिन जीवन-संघर्ष की आँच सहने में असमर्थ हैं। वह 'प्रेमाश्रम' के सबसे निर्जीव पात्रों में हैं, खासकर उन तपे हुए मार खाए किसानों के मुकाबले में जिनके गाँव को वह स्वर्ग बना देते हैं। उपन्यास का अंत अस्वाभाविक ही नहीं है, वह उसके प्रभाव को भी कम कर देता है। जिन शक्तियों ने लखनपुर के किसानों को पीस डालने में कुछ उठा नहीं रखा, वे सब बरकरार रहती हैं। उस अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं होता, जिसमें अंग्रेजों के दलाल किसानों की कमाई का फल कुछ खुद लूटते थे और बाकी अंग्रेज स्वामियों को भेंट-कर देते थे। तब लखनपुर एक सुखी और आदर्श गाँव कैसे बन गया?

उपन्यास के काल्पनिक अंत का यही महत्त्व स्वीकार किया जा सकता है कि उससे प्रेमचंद की आशाएँ जाहिर होती हैं कि भविष्य में वह किस तरह के गाँव चाहते थे। उससे यह जाहिर होता है कि प्रेमचंद समझते थे कि जमींदारी प्रथा खत्म हो जाए तो किसानों का जीवन इस तरह सुखी हो सकता है। यह मान लेने पर भी ज्ञानशंकर-संबंधी कथा को जितना विस्तार दिया गया है, वह अनावश्यक ही साबित होता है और उससे उपन्यास की मूल कथा का प्रभाव काफी कम हो जाता है।

इस तरह की खामियों से मामूली कलाकार भी बच सकता है, लेकिन मुख्य बात यह है कि 'प्रेमाश्रम' हिंदी का पहला 'हीरोइक' उपन्यास है जिसे लिखना एक

असाधारण कलाकार ही का काम था। उसमें जनता की वीरता का चित्रण है, बिना शब्दों की झंकार-टंकार का सहारा लिए हुए, बिना अलंकारों से साहित्य की आत्मा को ढाँके हुए। तुलसीदास ने भारतीय जनता के शौर्य का चित्रण किया था-पौराणिक गाथाओं के पात्रों द्वारा। प्रेमचंद तुलसीदास के त्याग, सहृदयता और शूरता की परंपरा के उत्तराधिकारी हैं।

'प्रेमाश्रम' की कला किस बात में हैं? कथा गढ़ने में, कथोपकथन में, चरित्र-चित्रण में? इन सब में भी लेकिन इन सबसे अलग भी। उस कला का विश्लेषण उपन्यास के इन अंगों का अलग-अलग विवेचन करने से नहीं हो सकता। वह कला जीवन का संपूर्ण चित्र देने में हैं, उस चित्र से जीवन को एक नई गति देने में है।

प्रेमचंद हमें ठेठ किसानों के बीच ले जाते हैं। उनके अलाव, उनके खेत और ताल, उनके अखाड़े और लावनी-ख्याल, उनके अंधविश्वास और नए जीवन के कसमसाते हुए भावांकुर-'प्रेमाश्रम' में यह सब कुछ सजीव है, उसके पृष्ठों में इतिहास जी रहा है। प्रेमचंद किसानों की प्राचीन परंपरा दिखाते हैं तो यह भी कि कहाँ उनकी कड़िया टूट रही हैं। प्रेमचंद की कला इस बात में है कि वे हिन्दुस्तान के बदले हुए किसान का चित्र खींच सके हैं। घटनाएँ साधारण हैं लेकिन उनसे वह अपने पात्रों का पुरानापन और नयापन, उनको पीछे ठेलनेवाली और आगे बढ़ाने वाली विशेषताएँ प्रकट करते हैं। पहाड़ की तस्वीर खींचना आसान है, नदी के बहाव को चित्रित करना मुश्किल। प्रेमचंद ने यथार्थ के बहाव को पकड़ लिया है। उसे उन्होंने भावी पीढ़ियों के लिए 'प्रेमाश्रम' में सुरक्षित कर दिया है।

प्रेमचंद की कला उपन्यास की चित्रमयता में है। प्रेमचंद अपने पात्रों पर मनोवैज्ञानिक लेख लिखने नहीं बैठ जाते, जैसा कि कुछ अद्भुत कलाकार किया करते हैं। वह अपने पात्रों से लंबी-लंबी स्पीचें भी नहीं दिलवाते जिनमें थोथे तर्कजाल का विस्तार करके उपन्यास को वजनी बना दिया जाता है। प्रेमचंद पात्रों के, घटनाओं के, दृश्यों के ऐसे चित्र आँकते हैं कि पाठक उन्हें हमेशा याद रखता है और वे उसकी स्मृति में छिपे हुए उसके विचारों और कर्मों को प्रभावित करते हैं।

प्रेमचंद ने 'मनोवैज्ञानिक' कलाकारों की तरह इस उपन्यास को तर्कजाल और अपनी टीका से लाद दिया होता तो वह साधारण जनता में कभी इतना लोकप्रिय

न होता। वह जो कुछ कहना चाहते हैं, उसे चित्रों द्वारा ही कहते हैं। पात्रों के संवादों में तर्कजाल भरनेवाले सज्जन वास्तव में अपने यथार्थ जीवन के अज्ञान को छिपाते हैं। उनका अनुभव बहुत ही सीमित और संकुचित होता है, लेकिन वह उसे हिंद महासागर की तरह गहरा दिखाना चाहते हैं। प्रेमचंद में यथार्थ जीवन की गहरी जानकारी है; उनके उपन्यासों में महत्वपूर्ण जीवन-दर्शन, सुलझा हुआ दृष्टिकोण और गंभीर विचार मिलते हैं।

प्रेमचंद के दृष्टिकोण की खूबी इस बात में है कि वह समाज में देख सकते हैं कि कौन-सी चीज मर रही है और कौन-सी चीज उग रही है। वह समाज को एक गतिशील क्रम के रूप में देखते हैं। यहाँ स्थिरता नहीं है लेकिन क्षण भंगुरता का नाम संसार नहीं है। यहाँ कुछ शक्तियाँ पतनशील हैं तो कुछ शक्तियाँ उदयशील भी। लखनपुर के किसान उगनेवाली शक्ति हैं। वे निरस्त्र हैं, संघर्ष में मार खा जाते हैं, भयानक यातनाएँ सहते हैं, अंधविश्वासों और कुसंस्कारों से पूरी तरह पीछा नहीं छुड़ा पाते, लेकिन भविष्य उन्हीं का है; समाज की उदीयमान शक्ति वही हैं। ज्ञानशंकर, ज्वालासिंह, गौस खाँ वगैरह भले ही शक्तिशाली दिखाई दे लेकिन उनका भविष्य अंधकारमय है। वे समाज की प्रगति को रोकनेवाली मरणशील शक्ति हैं। इन दो तरह के दलों में वर्षों तक संघर्ष चलता है और उसके दौरान नई नैतिकता पुरानी सामंती संस्कृति को चुनौती देती है, उससे टक्कर लेती है और दृढ़ होती है।

प्रेमचंद का जीवन-दर्शन इसी संसार में जूझनेवाले मनुष्यों के दुख-सुख, आशा-निराशा, विजय-पराजय का चित्रण करने में प्रकट होता है। वह पाठक को यह नहीं सिखाते कि यह संसार झूठा है, इसमें रहनेवाले मनुष्य झूठे हैं, उनका संघर्ष झूठा है। वह दिखलाते हैं कि मनुष्य जिन परिस्थितियों में पैदा हुआ है, उनसे प्रभावित होते हुए भी उन्हें बदलने की कोशिश करता है।

प्रेमचंद का गंभीर चिंतन, उनके ऊँचे विचार, एक नई मनुष्यता, एक नई नैतिकता का चित्रण करने में प्रकट होते हैं, जो हिंदुस्तान के किसानों में किरण की तरह फूट रही थी। इस घटना का अंतर्राष्ट्रीय महत्व था। हिंदुस्तान को आधार बनाकर हिंदुस्तान के जान-माल की मदद से अंग्रेजों ने ऐसा साम्राज्य कायम किया था जिसमें सूरज न डूबता था। उस साम्राज्य के स्तंभ थे, अंग्रेजों के दलाल, भारत के राजा,

जागीरदार और जमींदार। हिंदुस्तान के किसान उनके खिलाफ संघर्ष करके सिर्फ अपने सुखी जीवन के लिए न लड़ रहे थे बल्कि वह संसार के सभी दासों की शांति और स्वाधीनता के लिए लड़ रहे थे। प्रेमचंद हिंदी के पहले लेखक थे जिन्होंने अंतर्राष्ट्रीय महत्व का ऐसा उपन्यास लिखा था।

यह उपन्यास असहयोग-आंदोलन के बाद छपा, यह हमारा दुर्भाग्य था। फिर भी उसे स्वाधीनता-आंदोलन को दृढ़ करने के लिए उसे एक नई गति देने में किसान-समस्या को आजादी की मूल समस्या के रूप में स्वीकार करने में बहुत बड़ा काम किया है। ऐसा सामाजिक महत्व विरले ही उपन्यासों का होता है।

प्रेमचंद की कला उनकी सजीव शब्दावली, वर्णन की काव्यमयता, उनके गद्य के वह सजीव अंश, जिन्हें पाठक कविता की पंक्तियों की तरह रट लेते हैं-इन सबमें प्रकट होती है। प्रेमचंद की कला मनोहर, बलराज, कादिर के सजीव चित्रण में प्रकट होती है जिनसे बिछुड़ने पर एक आत्मीय के बिछोह का सा दुख होता है।

किसी समय जब प्रेमचंद के मनोहर, बलराज और कादिर का जीवन बदल जाएगा और लखनपुर वास्तव में एक सुखी गाँव बनेगा, तब मनोहर, बलराज और कादिर की संतान 'प्रेमाश्रम' पढ़ेगी और कहेगी - हाँ हमारे पुरखे वीर थे; उन्होंने अन्याय के सामने सिर नहीं झुकाया; वे अपना रक्त न बहाते तो यह गाँव सुखी न होता। और यह सब कहते-सोचते उनका हृदय प्रेमचंद के प्रति कृतज्ञता से भर उठेगा।